ARYAVART SHODH VIKAS PATRIKA
RNI TITLED NO. UPBIL04292
RNI REG. NO. UPBIL/2014/66218 PP. NO.- 158-160
ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-03, No.-II, Issues-15YEAR-2014 Extra

भारतीय परम्परा एवं संस्कृति में शिक्षक की संकल्पना

श्रीमती गीता शुक्ला
एसो0 प्रोफेसर– बी0एड0, एम. डी. पी. जी. कॉलेज प्रतापगढ, (उ0प्र0), भारत

सारांश : ***भारतीय परम्परा एवं संस्कृति में शिक्षक अथवा गुरु को ब्रह्मा–विष्णु–महेश एवं इससे भी बढ़कर साक्षात् परब्रह्म की उपाधि से मंडित किया गया है। यह उपाधि पूर्ण रूप में सार्थक है, क्योंकि जिस प्रकार परमेश्वर ब्रह्मा बनकर सृष्टि का निर्माण करता है, उसी प्रकार शिक्षक सद्विद्या एवं ज्ञान के द्वारा सही अर्थों में मानव के जीवन का निर्माण करता है। वह विष्णु रूप में सत्पथ के निर्देश द्वारा व्यक्ति की पदें–पदेरक्षा करता है, उसे भटकने से बचाता है और जब शिक्षक गरिमा से गिर जाता है तब वह संहार का कारण भी बनता है। व्यक्ति के अतिरिक्त समाज एवं राष्ट्र के परिपेक्ष में भी शिक्षक की यह भूमिका नितांत प्रासंगिक है।***

कुंजीभूत शब्द– भारतीय परम्परा, संस्कृति, शिक्षक सद्विद्या, सत्पथ, पदें–पदेरक्षा, संहार नितांत प्रासंगिक।

जहाँ तक शिक्षक की अवधारणा का प्रश्न है, शिक्षक शब्द में ही उसकी अवधारणा का बीज निहित है। संस्कृत की "शिक्षाविद्योपादाने" धातु से निर्मित शिक्षक शब्द का अर्थ है– विद्या का दान करने वाला। विद्या क्या है? विद्यज्ञाने धातु से व्युत्पन्न विद्या का अर्थ है– ज्ञान या जानना। क्या जानना? मैं क्या हूँ? संसार क्या है? इसका रचयिता कौन है? और उस लक्ष्य को मैं कैसे प्राप्त कर सकता हूँ? साथ ही अपने परिवार, समाज व राष्ट्र के प्रति मेरा क्या कर्तव्य है? इत्यादि इत्यादि। शिष्य को उपर्युक्त प्रकार का आत्मबोध कराने वाला,एवं उसकी अंतश्चेतना को जागृत कर देने वाला ही वास्तव में शिक्षक है।

विद्या की एक उत्तम परिभाषा है– सा विद्या या विमुक्तये। विद्याभारती का ध्येय वाक्य भी यही है। वस्तुतः जो हमें मुक्ति दिलाए वही विद्या है। यहाँ मुक्ति का अर्थ केवल जन्म–मरण चक्र से अथवा मायामोहमय संसार से छुटकारा पा जाना ही नहीं है, अपितु मुक्ति का अर्थ है– सभी प्रकार के आभावों से मुक्ति। अज्ञान–अविद्या से मुक्ति, दुर्गुण–दुर्व्यसनों से मुक्ति, कल्याणपथके अवरोधों से मुक्ति, और लौकिक अभ्युदय के पश्चात, आध्यात्मिक उन्नति द्वारा परमपुरुषार्थ मोक्ष की प्राप्ति। भारतीय संस्कृति में ऐसी सर्वांगीण मुक्ति की विद्या देनेवाला ही शिक्षक है।

मानव केवल हाड़ मांस का पुतला ही नहीं है। उसके अंदर एक दिव्य चेतना आत्मा का निवास है। मानव के मानस में स्थित उस बीज को विकसित करना ही शिक्षक का दायित्व है। इस संदर्भ में स्वामी विवेकानंद का यह कथन वस्तुतः सत्य है– "मनुष्य में जो पूर्णता गुप्त रूप से विद्यमान है उसे प्रत्यक्ष करना ही शिक्षक का कार्य है" विवेकानंद का यह कथन उसकी स्वयं की अनुभूति पर ही आधारित है, जिनके भीतर सूक्ष्म रूप में विद्यमान विलक्षण एवं दिव्य शक्ति का बोध उनके गुरु स्वामी रामकृष्ण परमहंस ने कराया था।

भारतीय परम्परा के अनुसार केवल पाठ्यपुस्तकें पढ़ा लेने वाला और कोर्स पूरा कराकर अपने कर्तव्य की इतिश्री कर देने वाला ही शिक्षक नहीं हैं। पाठ्यपुस्तकें तो साधन मात्र है, साध्य नहीं। पाठ्य पुस्तकों की सार्थकता तभी है, जबकि इनके माध्यम से उसकी क्षमता पहुंचा जाए। अतःयथार्थ में शिक्षक वही है जो छात्र की जन्मजात प्रतिभा व उसकी क्षमता को पहचानकर, उसे लक्ष्य बोध करा दे और उसमें ऐसी प्रेरणा, ऐसी स्फूर्ति भर दें कि वह अपनी मशाल लेकर स्वयं ही चले और अपने भाग्य का निर्माता स्वयं ही बन जाए। शिक्षक के लिए प्रयुक्त अध्यापक शब्द का भी मूलतः यही अर्थ है। अधि उपसर्ग पूर्वक गत्यर्थक धातु से बना अध्यापक शब्द स्वयं इस अवधारणा को व्यक्त कर रहा है कि जो छात्र को उसके गंतव्य तक ले जाए उसे उसके अधिष्ठान तक, उसके निश्चित लक्ष्य तक पहुंचा दे, वही अध्यापक है। शिक्षक एवं अध्यापक की भाँति गुरु शब्द ही हलायुध कोश में उल्लिखित निर्वचनों के अनुसार नितांत सार्थक एवं युक्तियुक्त है–

(क) गृणातिउपदिशातिवेदाशिस्त्राणिइतिगुरुः।
(ख) गिरतिनाशयतिअज्ञानंइतिगुरुः।
(ग) गीर्यतेस्तूयतेऽसौज्ञानतपोवृद्धत्वात।

अभिप्राय यह है कि वेदादिशास्त्रों का उपदेश करने वाला और अज्ञान का नाश करके ज्ञान के पथ पर अग्रसर करने वाला गुरु कहलाता है। और वही अपने ज्ञान एवं तप के आधार पर सबके द्वारा पूजा जाता है। भारतीय संस्कृति के अनुसार शिक्षा आज की भाँति कोई व्यवसाय अथवा क्रय–विक्रय की वस्तु नहीं है। महर्षि यास्क के अनुसार शिक्षा का अर्थ है– देना, अर्थात् दान करना शिक्षातिदानकर्मा और शिक्षक का अर्थ है–दान करने वाला, देने वाला, बेचने वाला नहीं। पूर्व में उल्लिखित"शिक्षा विद्योपादाने" का भी यही अभिप्राय है। भारतीय विद्या के दो ही सूत्रहै– शिक्ष और भिक्ष।अर्थात् ज्ञान का आदान और

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-03, No.-II, Issues-15YEAR-2014 Extra

प्रदान। भिक्ष का अर्थ है– याचना। शिष्ययाचकया भिक्षुक बनकर ज्ञानार्जन हेतु शिक्षक के द्वार पर जाता था। वह भोजनार्थ जो भिक्षाटन करता था उसका लक्ष्य भी विद्योपार्जन ही होता था। भारतीय परंपरा में श्रेष्ठ याचक वह होता था जो ज्ञान की खोज में श्रद्धावनत होकर तपोनिष्ठ–ब्रह्मनिष्ठ गुरु की शरण में जाता था, और श्रेष्ठ दाता भी वह गुरु वह शिक्षक ही होता थाजो ज्ञान केअंजन की शलाका सेशिष्य के अज्ञानतिमिर का नाश करकेउसे उस तत्व का ज्ञानकरा देता थाजिसके जान लेने से सब कुछ जान लिया जाता है और सभी प्रकार के दानों में सर्वश्रेष्ठ व परम पवित्र दान भी शिक्षा का दान ही माना जाता था–

सर्वोषामेव दानानां ब्रह्मदानंविशिष्यते।

आज सब कुछ बदल गया है। शिक्षक और भिक्षु दोनों ही व्यवसायी हो गए हैं। आज तो कालिदास की वहउक्ति पूर्णरूप से चरितार्थ हो रही है जिसके अनुसार–"केवल आजीविको के लिए अध्ययन–अध्यापन करने वाला ज्ञान का सौदागर बनिया कहलाता है।

यस्यागामःकेवलजीविकायैतंज्ञानपण्यंवाणिज्येवदन्ति।

हम आजीविका की उपेक्षा के पक्षपाती नहीं है, किंतु केवल आजीविका मात्र ही शिक्षा एवं शिक्षक का लक्ष्य नहीं होना चाहिए। आज हमें यह आत्मनिरीक्षण करना होगा कि हम शिक्षा के नाते समाज एवं राष्ट्र से किया और कितना ले रहे हैं? और उसके बदले में उसे दे क्या रहे है? भारतीय परम्परा में शिक्षक के लिए आचार्य शब्द का प्रयोग हुआ है। महर्षि यास्क के अनुसार तीन कारणों से शिक्षक को आचार्य कहा जाता है–

(क) आचार ग्राह्मति–क्योंकि वह आचार का ग्रहण करता है।

(ख) आचिनोतिअर्थान–क्योंकि वह अर्थों का चयन करता है अर्थात् शिष्य के अनुरूप ही उसके लिए विषय निर्धारित करता है

(ग) आचिनोतिबुद्धिम– क्योंकि वह शिष्य की बुद्धि का चयन करता है अर्थात् उसकी बुद्धि को सही दिशा में प्रेरित करता है।

उपर्युक्त तीनों कार्य वही शिक्षक कर सकता है जो स्वयं सदाचारी हो, जो स्वयं सभी अर्थों का ज्ञाता हो और जिसके पास स्वयं शुद्ध निर्मल व सतोगुणमयी बुद्धि या प्रज्ञा हो। इसलिए अथर्ववेद में कहा गया है–

"आचार्योंब्रम्हचारी, ब्रम्हचारी प्रजापतिः।

अर्थात् आचार्य और राजा वही हो सकता है जो ब्रह्मचारीहो। अर्थात जो जितेंद्रयि हो, जिसने काम–क्रोध आदि का दमन कर लिया हो जो नैतिक मूल्यों की आधारशिला पर खड़ा हो क्योंकि छात्र शिक्षक द्वारा पढ़ाई गई पुस्तक में निहित ज्ञान से उतना प्रभावित नहीं होता जितना कि वह उसके आचार–विचार, शील– स्वभाव तथा बोलचाल से प्रभावित होता है संस्कृत में छात्र के लिए "अंतेवासी" शब्द अत्यंत महत्वपूर्ण एवं सार्थक है। जिसका अर्थ है– गुरु के अत्यंत निकट अथवा उसके अंदर वास करने वाला। इस संदर्भ में अथर्व वेद का वह मंत्र नितांत प्रासंगिक है जिसमें आलंकारिक रूप से कहा गया है– आचार्य उपनयन करके ब्रहमचारी को अपने गर्भ में रखता है– **आचार्य उपनयमानों ब्रह्मचारिणं गर्भ कृणुते अंतः।**

अभिप्राय यह हुआ कि गर्भस्थ शिशु जिस प्रकार माता के द्वारा ग्रहण किए हुए अन्न आदि से वृद्धि को प्राप्त होता है अथवायों कहिए कि गर्भावस्था में जो माँ खाती है वही बच्चा खाता है। इसलिए उसे उस अवस्था में अपने खान–पान का विशेष ध्यान रखना पड़ता है। ठीक उसी भाँति आचार्य के गर्भ में रहने वाला ब्रह्मचारी या विद्यार्थी खान–पान में आचार्य का ही अनुकरण करता है यदि वह देखता है कि गुरूजी चाट–पकौड़ी खाते रहते हैं, तो वह भी ऐसा ही करने लगता है। इसी भाँति माँ की गर्भ में बच्चे माँ की आँखों से देखता है और माँ के कानों से ही सुनता है। अर्थात् जैसे दृश्य वह देखती है और जो शब्द वह सुनती है उसका प्रभाव निश्चित रूप से गर्भस्थ शिशु पर पड़ता है। यदि उस अवस्था में क्षत्राणी चक्रव्यूह की संरचना और उसमें प्रवेश की विधि सुन लेती है तो अभिमन्यु जैसा क्षत्रीय कुमार गर्भ से ही उस विद्या का ज्ञान लेता है। इसी प्रकार शिक्षक के सांनिध्य में रहने वाला छात्र भी अपने शिक्षक की आँखों से देखता है और उसी के कानों से सुनता है। यदि वह देखता है कि गुरुजी सिनेमा व टी.वी. के तथा फिल्मी गाने व क्रिकेट सुनने के बहुत शौकीन है, तो वह भी उस ओर ही प्रवृत्त हो जाता है। गर्भ में बच्चा माँ के मन से ही सोचता है जैसे विचार गर्भवती के होते हैं, वैसे ही विचार उसके गर्भ में पलने वाले बच्चे के हो जाते हैं। इसलिए उस स्थिती में स्त्री को अच्छे विचार और शुद्ध, निर्मल व प्रसन्न मन रहने की सलाह दी जाती है। ठीक इसी प्रकार शिक्षक के आचार–विचार उसके चिंतन का प्रभाव छात्र के मन पर ज्योंकात्यों अंकित हो जाता है। इस दृष्टि से किसी हद तक विद्यार्थी को एक प्रकार से अपने शिक्षक की "टू काफी" या उसका "टेपरिकॉर्ड" ही कहा जा सकता है। अतः भारतीय परंपरानुसार शिक्षक का पूर्ण रूप से संस्कारित व सदाचारी होना अनिवार्य है। तभी वह अपने अंतेवासी को उत्तम संस्कार दे सकता है और एक संस्कारित पीढ़ी को जन्म देना ही वस्तुतः शिक्षक का समाज व राष्ट्र के प्रति सबसे बड़ा योगदान है।

आज शिक्षक बंधुओं को प्रायः कहते सुना जाता है

ISSN NO.-2347-2944 (Print)
e-ISSN NO.-2582-2454 (Online)
Vol.-03, No.-II, Issues-15YEAR-2014 Extra

क्या करे अच्छे वसुपात्र छात्र ही नहीं मिलते और छात्रगण कहते हैं– योग्य शिक्षक नहीं मिलते। ये दोनों बातें अंशतः सही है सर्वांश में नहीं। अधिकांशतः ऐसी बातें अपनी हताशा व निराशा को व्यक्त करने तथा अपनी स्वयं की कमियों को छिपाने का माध्यम ही प्रतीत होती हैं। यह विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि धरती अभी रत्नों से खाली नहीं हुई है।मैं विशेषतः देवभूमि, पुण्यभूमि भारत की बात करता हूँ। यदि आज भी कोई अर्जुन जैसा व्यामोहित किंतु अहंकार त्यागकर श्रद्धापूर्वक पूर्ण समर्पण भाव से यह कहने वाला हो–"यच्छ्रेयःस्यान्त्रिश्चितंब्रूहि तन्में, शिष्यस्तेऽहंशाधिमांत्वांप्रपत्रम"। अर्थात हे भगवान मैं आपका शिष्य हूँ, शरणागत हूँ। अतः जो सुनिश्चित रूप से मेरे लिए कल्याणकारी हो वह उपदेश मुझे दीजिए, तो निश्चित समझें– कोई कृष्ण जैसा गीता का उपदेश देने वाला गुरु भी अवश्य मिल जाएगा। साथ ही दूसरी ओर यदि विविधविद्या विशेषज्ञ एवं तत्वज्ञान का पारदर्शी कृष्ण जैसा–"दिव्यंददामि तेचक्षुः" ऐसा कहकर शिष्य को दिव्यचक्षु (Divine Vision) देने वाला और इस विराट विश्व की अलौकिक विभूतियों की अनुभूति कराने वाला गुरु हो तो उस गुरु को कोई अर्जुन जैसा शिष्य भी मिल ही जाएगा और जहाँ योगेश्वर कृष्ण जैसा आत्मबोध व कर्त्तव्यबोध करा देने वाला गुरु होगा तथा अर्जुन श्रद्धालु धनुर्धारी (धनुष बाण छोड़कर युद्ध से भागने वाला नहीं है अपितु उत्साह संपन्न) शिष्य होगा, तो वहाँ विजयश्री एवं समस्त ऐश्वर्यों की प्राप्ति होगी। तब भगवद्गीता की यह उक्ति चरितार्थ होगी–

यत्रयोगेश्वरः.ष्णोयत्रपार्थोधनुर्धरः।
तत्रश्रीर्विजयोभूतिर्ध्रुवानीतिर्मतिर्मम।।

संदर्भ ग्रन्थ सूची

1. विष्णुपुराण
2. निरुक्त3ध्20
3. मनुस्मृति4ध्233
4. मालविकाग्निमित्र1ध्17
5. अथर्ववेद–11ध्5ध्16
6. अथर्ववेद–11ध्5ध्13
7. भगवद्गीता 2ध्78
8. भगवद्गीता 11ध्78

*****